Original Research Paper History

ikphu Hkkjr dh tu f’k{kk i)fr

Ruchi Jain Research Scholar, Department of History, University of Kota.

KEYWORDS

भारत में प्राचीन काल से ही ज्ञान की अतिशय प्रतिष्ठा रही है। व्यक्तित्व के विकास की दिशा में ज्ञान को महत्वपूर्ण माना गया है। जैनागमों में भी ज्ञान की महिमा स्वीकारी गई है। यह ज्ञान सर्वसाधारण को किस प्रकार सुलभ हो इसके लिए भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षण पद्धति पर विशेष ध्यान दिया गया है। वैदिक या ब्राह्मण शिक्षा पद्धति, बौद्ध शिक्षा पद्धति और जैन शिक्षा पद्धति तीनों संस्कृतियों में शिक्षण की अपनी परम्पराएं रही है। जैन शिक्षा पद्धति के विषय में हमें जैन धर्मग्रन्थों से अनेक उल्लेख प्राप्त होते है। इन्हें एकत्रित करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि निःसन्देह भारतवर्ष में प्राचीनकाल में एक अत्यन्त सुव्यवस्थित जैन शिक्षण पद्धति थी।

शिक्षा के लिए अंग्रेजी में शब्द है – “Education” यह शब्द लैटिन भाषा के एज्यूकेटम से बना है। एजुकेटम में दो शब्द है ए (इ) तथा डूको (Duco) 'ए' का अर्थ है अन्दर से तथा ''डूको'' का अर्थ है आगे बढ़ना। इस प्रकार एजुकेशन का अर्थ हुआ अन्दर से आगे बढ़ना। इस परिप्रेक्ष्य में जैन शिक्षा वह शिक्षा है जो आत्मविजय की ओर बढ़ने का मार्ग सिखाती है, मनुष्य की अनन्त ज्ञान, दर्शन, चरित्र और बल के विकास की सम्भावनाओं को पूर्णता प्रदान करने पर जोर देती है। जैन शिक्षा पद्धति सम्पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक भूमि पर प्रतिष्ठित है यह जीवन की चरम उपलब्धि मोक्ष को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानकर जीव और सम्पूर्ण जगत के ज्ञेयतत्व को शिक्षा का विषय बनाती है।

जैन शिक्षा पद्धति का प्राचीन काल से क्रमिक विकास हुआ। तीर्थंकरों, गणधर तथा गणधरों से आचार्य परम्परा द्वारा शिक्षा प्रवाहित होती रही। प्रारम्भिक चरण में जब भारतीय चिन्तन मोक्ष को केन्द्र बिन्दु मानकर चल रहा था उस समय जैन शिक्षा पद्धति का जो स्वरूप था वह आगे चलकर देश और काल के अनुरूप विकसित हुआ। जैन धर्म में पंच परमेष्ठीयों (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) इनमें उपाध्याय का कार्य मुख्य रूप से शिक्षा का बताया है। आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीनो ही गुरू जैन धर्म में मुनिव्रत का पालन करते है।1 ये साधु वर्षाकाल में चार महीने एक ही स्थान पर रहकर अस्थायी रूप से शिक्षा के केन्द्रों को निर्मित करते है। 2 गुरू, शिष्य और अभिभावक के उदात्त सम्बन्धों के कारण जैन धर्म में शिक्षण पद्धति अन्य शिक्षण पद्धतियों की तुलना में अनूठी है।

जैन दर्शन में ज्ञान के पॉच भेद बताऐ है :– 1. efrKku, 2. J`rKku] 3. vof/kKku, 4- eu%i;Z;Kku, 5. dsoyKkuA[3] सामान्य व्यक्ति का विकास मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से प्रारम्भ होता है। इन्द्रियों और मन की सहायता से होने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहा जाता है। मतिज्ञान से व्यक्ति की आई.क्यू. का पता लगता है। इसी योग्यता के आधार पर उसके श्रुतज्ञान का विकास होता है। इसी ज्ञान को मौखिक और स्मृति के माध्यम से वर्धित किया जाता था तथा व्यक्तित्व का समग्र विकास किया जाता था। समग्र विकास से तात्पर्य अन्तरंग एवं बाह्य सभी गुणों का विकास है। व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए तीन कारण बताये गये है।[4] :– 1. सम्यग्दर्शन, 2. सम्यग्ज्ञान, 3. सम्यक्चारित्र। शिक्षा का सम्पूर्ण विषय सम्यक्–दर्शन, सम्यक्–ज्ञान और सम्यक्चारित्र के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाता है। इन्हीं तीनों के सम्मिलित रूप को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग कहा गया है। शिक्षा पद्धति का प्रयोग जैन जगत में तत्व ज्ञान के लिए किया गया है। तत्वों के यथार्थ स्वरूप की श्रद्धा को सम्यक्दर्शन कहते है। वास्तविक बोध सम्यक् ज्ञान है तथा आत्मकल्याण के लिए किया जाने वाला सदाचरण सम्यक् चारित्र है। तत्त्वार्थ सूत्र में इन्हें प्राप्त करने की दो विधियाँ बतलायी हैं[5] :–

1- fulxZ fof/k[6]:– निसर्ग का अर्थ है – स्वभाव, प्रज्ञावान व्यक्ति को गुरू अथवा शिक्षक द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नही रहती। जीवन के विकास क्रम में वह स्वतः ही ज्ञान के विभिन्न विषयों को सीखता रहता है तथा तत्वों का सम्यक् बोध स्वतः प्राप्त करता रहता हैं। जीवन ही उनकी प्रयोगशाला बन जाती है। सम्यक्–ज्ञान और सम्यक्–बोध की उपलब्धियों को वे जीवन की प्रयोगशाला में उतार कर सम्यक्चारित्र को उपलब्ध करते है, यही निसर्ग विधि है।

2-vf/kxe fof/k[7] – अधिगम का अर्थ है पदार्थ का ज्ञान। दूसरों के उपदेशपूर्वक पदार्थों का जो ज्ञान होता है, वह अधिगमज कहलाता है। इस विधि के द्वारा प्रतिभावान तथा अल्प प्रतिभायुक्त सभी प्रकार के व्यक्ति तत्वज्ञान प्राप्त करते है। यही तत्वज्ञान सम्यक्दर्शन का कारण बनता है। गुरू के उपदेश द्वारा जीव और जगत रूपी तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना ही अधिगम विधि है। इन दोनों विधियों में प्रमुखता यह है कि निसर्ग विधि में व्यक्ति को प्रज्ञा का स्फुरण होता है और अधिगम विधि में गुरू का माध्यम अनिवार्य होता है।

अधिगम के निम्न भेद बताए गए है :–
1.निक्षेप विधि, 2. प्रमाण विधि , 3. नय–विधि 4. स्वाध्याय विधि, 5. अनुयोग द्वार विधि।

1-fu{ki fof/k[8] :– शब्द प्रयोग को लेकर उत्पन्न हुई समस्या का समाधान निक्षेप पद्धति से होता है। लोक व्यवहार में अथवा शास्त्र में जितने शब्द होते है, वे कहां किस अर्थ में प्रयोग किये जा रहे है। इसका ज्ञान होना निक्षेप विधि है। हर शब्द अनेकार्थक होता है। उसके कुछ अर्थ प्रासंगिक होते है और कुछ अप्रासंगिक। प्रासंगिक अर्थ का ग्रहण और अप्रासंगिक अर्थों का परिहार करने के लिए व्यक्ति शब्द के सब अर्थों को अपने दिमाग मे स्थापित करता है। ऐसा किए बिना कोई भी शब्द अपने प्रयोजन को पूरा नही कर सकता अर्थात् अनिश्चितता की स्थिति से निकलकर निश्चितता में पहुँचना निक्षेप विधि है। निक्षेप के चार प्रकार होते है :–1. नाम, 2. स्थापना, 3. द्रव्य, 4. भाव

नाम निक्षेप[9] :– यह विधि ज्ञान पारित का प्रथम चरण है। शब्द के मूल अर्थ की अपेक्षा किए बिना ही किसी व्यक्ति या वस्तु का इच्छानुसार नामकरण करना नाम निक्षेप है। इसमें जाति, द्रव्य, गुण, क्रिया, लक्षण आदि निमित्तों की अपेक्षा नही की जाती, जैसे किसी व्यक्ति का नाम शेरसिंह रखना।

.0स्थापना निक्षेप[10] :– मूल अर्थ से शून्य वस्तु को उसी अभिप्राय से स्थापित करना स्थापना निक्षेप है। अर्थात् वास्तविक वस्तु की प्रतिकृति, मूर्ति, चित्र आदि बनाकर अथवा बिना आकार बनाये ही किसी वस्तु में उसकी स्थापना करके मूल वस्तु का ज्ञान कराना स्थापना निक्षेप विधि है। श्लोक वार्तिक में इसके दो भेद बताए गए है :– 1. सद्भाव स्थापना, 2. असद्भाव स्थापना। सद्भाव स्थापना के अनुसार कोई प्रतिकृति बनाकर ज्ञान कराया जाता है यह प्रतिकृति काष्ठ, मृत्तिका, पाषाण, दाँत सींग आदि की बनाई जा सकती है।

0 असद्भाव स्थापना में वस्तु की यथार्थ प्रतिकृति नहीं बनायी जाती है बल्कि किसी भी आकार की वस्तु में मूल वस्तु की स्थापना कर दी जाती हैं जैसे शतरंज के मोहरों में राजा, वजीर, प्यादें, हाथी आदि की स्थापना कर ली जाती है।

द्रव्य निक्षेप[11] :– भूत एवं भावी स्थिति को ध्यान में रखते हुए वस्तु का ज्ञान कराना द्रव्य निक्षेप विधि है।

भाव निक्षेप [12]:– वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखकर वस्तुस्वरूप का ज्ञान कराना भाव निक्षेप विधि है।

2-izek.k fof/k[13] :– सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते है। संशय आदि से रहित वस्तु का पूर्णरूप से ज्ञान कराना प्रमाण विधि है। जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में बोध कराने वाला ज्ञान। कषायपाहुड़ के अनुसार ''जिसके द्वारा पदार्थ माना जाए, उसे प्रमाण कहते है। जीव और जगत का पूर्ण एवं प्रमाणिक ज्ञान इस विधि के द्वारा प्राप्त होता हैं। प्रमाण विधि के दो भेद है। 1. प्रत्यक्ष प्रमाण, 2. परोक्ष प्रमाण। बिना किसी बाह्य आलम्बन के होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान हमें इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा की योग्यता से ही प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद है :– पारमार्थिक प्रत्यक्ष व संव्यावहारिक प्रत्यक्ष। परोक्ष ज्ञान को पराधीन ज्ञान भी कहते है यह ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है। परोक्ष के भी पॉच भेद किए गए है।

1. स्मृति, 2. प्रत्यभिज्ञान, 3. तर्क, 4. अनुमान, 5. आगम

0 3-u; fof/k[15]: अनन्त धर्मात्मक वस्तु के विवक्षित धर्म को मुख्य और अन्य धर्मों को गौण करने वाले विचार को नय कहा जाता हैं। नय विधि द्वारा वस्तुस्वरूप का आंशिक विश्लेषण करके ज्ञान कराया जाता हैं नय के मूलतः दो भेद है :

1.द्रव्यार्थिक नय :– सामान्य को विषय बनाने वाला नय

2.पर्यायार्थिक नय :– पर्याय अर्थात् विशेष को विषय बनाने वाला नय। इनमें से प्रथम नय के तीन और द्वितीय के चार अर्थात् कुल मिलाकर सात भेद होते है :–

1.नैगमनय :– यह सबसे अधिक स्थूल और व्यावहारिक नय है अनिष्पन्न अर्थ में संकल्प मात्र को ग्रहण करने वाला नैगम नय है। जो नय अतीत, अनागत और वर्तमान को विकल्प रूप से साधता है वह नैगमनय है।

2.संग्रहनय :– अपनी जाति का विरोध किए बिना समस्त विषयों को एक रूप से ग्रहण करने वाला नय संग्रहनय हैं।

3.व्यवहार नय :– संग्रहनय के द्वारा ग्रहीत अर्थ का विधिपूर्वक भेद करना व्यवहार नय हैं

4.ऋजु नय :– वस्तु की वर्तमान पर्याय मात्र को ग्रहण करने वाला विचार ऋजु सूत्र नय है। इसके दो भेद है –सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय और स्थूल ऋजु सूत्र नय।

5.शब्द नय – शब्द प्रयोगों में आने वाले दोशों को दूर करके तद्नुसार अर्थ भेद की कल्पना करना शब्द नय है।

6.समभिरूढ़ नय : एक शब्द के अनेक अर्थों में से प्रधान अर्थ को ग्रहण करने वाला नय समभिरूढ़ नय है।

7.एवं भूत नय : शब्द के फलित होने वाले अर्थ के घटित होने पर ही उसको उस रूप में मानना।

ISSN - 2250-1991 | IF : 5.215 | IC Value : 79.96

इस प्रकार, इन सात नयों के द्वारा जगत का समस्त व्यवहार संचालित होता है।

4-Lok/;k; fof/k[18] : विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वाध्याय विधि का उपयोग किया जाता था। इसके पाँच भेद है :

1. वाचना[19] – ग्रन्थ, अर्थ या दोनों का निर्दोष रीति से पाठ करना।
2.पृच्छना[20]– संशय का निराकरण करने के उद्देश्य से प्रस्तुत विषय के संदर्भ में प्रश्न करना।
3.अनुप्रेक्षा : पढ़ें हुए पाठ का मन से अभ्यास करना अर्थात् उसे पूर्ण रूप से आत्मसात् करते हुए श्रुतज्ञान का परिशीलन करना।
4. आम्नाय [21] : शुद्धिपूर्वक पाठ का बार–बार दोहराना।
5. धर्मोपदेश[22]: धर्मकथा करना धर्मोपदेश है। इसके भी चार भेद है:–1.आक्षेपिणी,2. विक्षेपिणी, 3. संवेदिनी, 4. निर्वेदिनी। स्वाध्याय विधि का प्रयोग ज्ञान में पूर्णता लाने के लिए, संवेग, तप वृद्धि के लिए तथा विचारों में शुद्धि बढ़ाने के लिए किया जाता था।

.5.vu|;kx}kj fof/k[23] : इस विधि में तत्वों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसके लिए वह निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान, सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व आदि चौदह प्रश्नों के द्वारा सम्यक् दर्शन प्राप्त करता है।

उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त 9 वीं शती में रचित जैन ग्रंथ आदिपुराण में भी शिक्षण विधियों का उल्लेख मिलता है। जो निम्न है :
1-ikB fof/k [24] :– गुरू या शिक्षक शिष्यों को पाठ विधि द्वारा अंक तथा अक्षर ज्ञान की शिक्षा देते है। इस विधि का प्रारम्भ आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से प्रारम्भ होता है। इसी विधि के द्वारा उन्होनें अपनी कन्याओं ब्राह्मी और सुन्दरी को शिक्षा दी थी। इस पद्धति में गुरु द्वारा लिखे गये या दिये गये पाठ को शिष्य बार–बार लिखकर कंठस्थ करता है। सामान्यतः इस विधि का प्रयोग जैन पुराणों के समस्त पात्रों के अध्यापन में किया गया है। इस विधि में मूलतः तीन शिक्षा तत्व परिगणित है:– 1. उच्चारण की स्पष्टता 2. लेखन कला का अभ्यास, 3. तर्कात्मक संख्या प्रणाली विधि।

2-i|'ukÙkj fof/k [25]:– प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग जैन वाङ्मय में कई जगह किया जाता हैं। इसमें शिष्य प्रश्न करता है और ज्ञानी गुरूजन उन प्रश्नों का उचित उत्तर देकर शिष्य का मार्गदर्शन करते है। इस विधि के माध्यम से गुढ़ और दुरूह विषय को भी सरलतापूर्वक समझाया जाता था जिससे विषयों को आत्मसात् करने में शिष्य को सरलता होती थी।

3-'kkL=kFk fof/k [26] :– शास्त्रार्थ विधि प्राचीन शिक्षा पद्धति की एक प्रमुख विधि है। इस विधि में पूर्व और उत्तर पक्ष की स्थापनापूर्वक विषयों की जानकारी प्राप्त की जाती है। एक ही तथ्य की उपलब्धि विभिन्न प्रकार के तर्कों, विकल्पों और बौद्धिक प्रयोगों द्वारा की जाती है। आदिपुराण में उल्लेख है कि प्राचीन काल में शास्त्रार्थ मंत्रियों के बीच आप्त तत्व की जानकारी के लिए किया जाता था।

इस विधि की निम्न विशेषताऐं है :– 1. ननु – शब्द द्वारा शंका उत्पन्न करना, 2. 'न च' या इति चेन्न द्वारा शंका का निराकरण करना, 3. यत्वेंद 'यथेकं' द्वारा पक्ष का निराकरण करना।, 5. अनवस्था, चक्रक, प्रसंग साधन आदि दोषों का उद्भावना या प्रस्तुत करना, 5. 'एवं' 'आह', अत्र 'यस्तु' आदि संकेतांशो द्वारा कथनों और उद्धरणों को उपस्थित कर समालोचन करना। 6. विकल्पों को उठाकर प्रतिपक्षी का समाधान करते हुए स्वपक्ष की सिद्धि के लिए अक्षेपिणी, विक्षेपिणी, जैसे कथाओं का प्रयोग करना, 7. 'तदुक्तं' 'नादि' जैसे शब्दों का किसी वस्तु या कथन पर बल देने के लिए प्रयोग करना।

4-miØe fof/r [27]: इस विधि द्वारा श्रोता शास्त्र को समीप करता है। अर्थात् उद्दिष्ट पदार्थ को श्रोताओं की बुद्धि में बैठा देना, उन्हें अच्छी तरह समझा देना उपक्रम है। इस उपोद्धात भी कहते है।

5-Jo.k fof/k : इस विधि के अनुसार किसी भी तथ्य को सुनकर या उसका श्रवण करके उसे ग्रहण करना श्रवण विधि है। विशेषावश्यक भाश्य में श्रवण में सात विधियों का उल्लेख किया गया है– 1. मौनपूर्वक श्रवण, विरोधरहित, अनुकरणीय, जिज्ञासु, मीमांसात्मक, विषयपारायण, अभिव्यक्ति पूर्वक श्रवण।

6-i|pkx fof/k [28] – इस विधि के द्वारा वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और उपदेश को समझा जाता था।

7-infof/k : 'पद्यन्ते नायन्ते ऽ नेनेति पदं' अर्थात् जिसके द्वारा अर्थ जाना जाता है वह पद है। पद विधि द्वारा शब्दों का वर्गीकरण करके उसके अर्थ की निश्चित अवधारणा प्रकट की जाती है।

8-i|:i.kk fof/k [29] – वाच्य वाचक, प्रतिपाद्य–प्रतिपादक एवं विषय–विषयी भाव की दृष्टि से शब्दों का आख्यान करना प्ररूपणा विधि है। गुरु शिष्य को 'कि', 'कस्य', 'केन', 'क्व' कियत, 'कालं; एवं कतिविधं इन छः प्रश्नों द्वारा निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान का साधन करते हुए अध्यापन करना प्ररूपणा विधि है।

इसके अतिरिक्त पदार्थ विधि, संगोष्ठी विधि, व्याख्या विधि आदि शिक्षा की पद्धतियों का प्रयोग प्राचीन काल मे गुरूओं, आचार्यों द्वारा किया जाता था। इस प्रकार गूढ़ से गूढ़ विषय को भी उक्त विधियों के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता था कि शिष्य भली प्रकार इसे हृदयंगम कर सके।

lUnHkZxzUFk lwph&

1 दृष्टव्य– वट्टकेरः 'मूलाचार' (माणिकचन्द दि. जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि.स. 1977,1980)।
2 पी.बी. देसाईः जैनिज्म इन साउथ इण्डिया (जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापूर, 1952)।
3 पूज्यपादः सर्वार्थसिद्धि, सम्पादक पं. फूलचन्द सिद्धान्त शास्त्रीः (भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणासी)
4 सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग : – तत्वार्थ सूत्र 1।1।
5 तन्निसंर्गादधिगमाद्वा। – तत्वार्थ सूत्र 1।3।
6 तत्वार्थ सूत्र 1।3।
7 अधिगमों दर्थावबोधः।यत्परोपदेशपूर्वक जीबा अधिगमनिमित्त तदुत्तरम्। सर्वार्थसिद्धि1।
8 संशये विपर्यये अनध्यवसाये वा स्थितेश्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः। – धवला भाग 4/13, 1/2/6।
9 अतद्गुणे वस्तुनि सव्यवहारार्थ पुरूषाकर न्नियुज्यमानं संज्ञाकर्म नाम। – सर्वार्थसिद्धि 1/4।
10 सद्भावेतरभेदेन द्विधा तत्वाधिरोपतः / श्लोक वार्त्तिक 2।1।5।
11 सद्भानि परिणाम प्राप्तिं प्रति योग्यतामदाधनं। सद्द्रव्य भित्युच्यते अथवा अद्भावं वा द्रव्यमित्युच्यते। तत्वार्थवार्तिक 1।5।
12 वर्तमान तत्त्वार्थोपलक्षितं द्रव्यं भावः) – सर्वार्थसिद्धि 1।5।
13 सम्यक् ज्ञानं प्रमाणं ....। प्रमाण परीक्षा प्र.1।
14 कषायपाहुड 1।1।1, 27, 37,6।
15 जैन तत्व विद्या, मुनिप्रमाण सागर पृं.260।
16 सर्वार्थसिद्धि 1।33।141।2
17 कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पृष्ठ 271
18 वाचना पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः। तत्वार्थसूत्र 9।25।
19 सर्वार्थसिद्धि 9।25।443।4।
20 सर्वार्थसिद्धि 9।25।443।4
21 सर्वार्थसिद्धि 9।25।443।5
22 तत्त्वार्थ सूत्र 7।87
23 सर्वार्थसिद्धि 1।7
24 आदिपुराण 96।104, 16।105–108
25 वही 1।138, 2।2, 2।26, 2।28–29, 12।212–252
26 वही 4।16–30, 5।27–88
27 वही 2।102–104
28 वहीं 21।96
29 सर्वार्थसिद्धि 1।8